इकाई 8 इरावती कर्वे *

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 जीवन परिचय

8.3 मुख्य विचार

8.3.1 हिंदू समाज

8.3.2 नातेदारी व्यवस्था

8.3.3 युगांत

8.4 महत्वपूर्ण कृतियाँ

8.5 सारांश

8.6 संदर्भ

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य होंगे कि –

- इरावती कर्वे का संक्षिप्त जीवन परिचय प्रस्तुत कर सकें;
- इरावती कर्वे की मुख्य अवधारणाओं पर चर्चा कर सकें; तथा
- इरावती कर्वे की कुछ महत्वपूर्ण कृतियों की सूची तैयार कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

इरावती कर्वे भारत की पहली महिला मानव विज्ञानी और पुणे विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग का संस्थापक थीं। उनके काम का दायरा नातेदारी व जाति व्यवस्था के मानचित्रण से लेकर महिलाओं की समकालीन प्रस्थिति विषयक सर्वेक्षणों तक फैला हुआ है। हिंदू समाज की आंतरिक अखंडता की व्याख्या करने के लिए उन्होंने हिंदू पौराणिक कथाओं का संबंध आधुनिक रीति–रिवाजों से जोड़ा।

वही उपक्रम एक बार फिर *युगांत* (1967) में देखा गया, जो कि मराठी में लिखी गई थी। इसे उस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक के रूप में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। अपनी पुस्तक *युगांत : दि एन्ड ऑफ एन ईपक* में इरावती कर्वे ने *महाभारत* में उल्लिखित चरित्रों और समाज पर विचार किया। पुस्तक का विषय अपने व्यापकतम अर्थ में धर्मनिरपेक्ष, वैज्ञानिक और मानवशास्त्रीय है।

इस इकाई का आरंभ हम इरावती कर्वे के जीवन परिचय से करेंगे। इसके बाद हम उनकी कुछ मुख्य अवधारणाओं पर चर्चा करेंगे।

---

* डॉ॰ ज्योति राघवन, कमला नेहरू कॉलेज, नई दिल्ली कृत।

8.2 जीवन परिचय

इरावती कर्वे एक भारतीय मानवशास्त्री थीं। इनका जन्म बर्मा (अब म्यांमार) के म्यंजन नामक स्थान पर हुआ। जन्म के कुछ वर्षों बाद से इनके पिता ने इनको भारत भेज दिया, जहाँ इनकी शिक्षा–दीक्षा पुणे (अब महाराष्ट्र में) नामक शहर में हुई। यहाँ वह एक ब्राह्मण परिवार (परांजपेय) के साथ रहती थीं। इस परिवार में शिक्षा को अतीव महत्व दिया जाता था। इरावती ने उन्हीं की मान्यताओं को अपनाया। तदंतर उनका विवाह कर्वे परिवार में कर दिया गया, जो कि शिक्षा विशारद एवं समाज सुधारक कहलाते थे।

उच्च शिक्षा के लिए जर्मनी जाने से पूर्व इरावती ने बम्बई विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में स्नातक और समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर (1928) की उपाधि ली। वर्ष 1930 में मानवविज्ञान में उत्कृष्ट अनुसंधान के लिए बर्लिन यूनिवर्सिटी ने उन्हें डी.फिल की उपाधि प्रदान की। यहीं से उनके मानवशास्त्रीय अनुसंधान का दीर्घ एवं प्रतिष्ठित जीवन–यात्रा का शुभारंभ माना जा सकता है। उनका व्यावसायिक प्रशिक्षण बर्लिन यूनिवर्सिटी में ही यूजीन फिशर की देखरेख में सम्पन्न हुआ। उन्होंने सामाजिक और शारीरिक नृविज्ञान दोनों ही विषयों में ज्ञान प्राप्त किया।

बॉक्स 8.1: इरावती कर्वे की शैक्षणिक यात्रा

इरावती कर्वे ने एक नवयुवती के रूप में भारत छोड़कर विदेश जाकर पढ़ने का फैसला एक ऐसे वक्त में किया जब ऐसा करना एक असामान्य बात मानी जाती थी। उनके गंतव्य बर्लिन में उन दिनों अशांति व्याप्त थी – प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यह शहर अपकर्ष की दशा में पहुँच चुका था, फिर भी उसने सांस्कृतिक उदारता विकसित की थी, मगर उसने भी कुछ वर्ष बाद तानाशाही शासन के आगे घुटने टेक दिए।

कर्वे के शोध–प्रबंध का अनुवीक्षण जर्मन मानवशास्त्री युजीन फिशर द्वारा किया गया था, जो कि जर्मन दक्षिण–पश्चिम अफ्रीका (अब नामीबिया) में 'प्रजाति मिश्रण' पर अपने अध्ययन और फिर जर्मनी में सैकड़ों 'प्रजातीयता से मिश्रित' बच्चों के बलात् बंध्याकरण व अन्य सुजनन–विज्ञान नीतियों के समर्थक के रूप में जाने जाते थे। फिशर ने कर्वे को प्रजाति और कपाल असममिती के बीच सहसंबंध को सिद्ध करने का कार्य सौंपा था, जो कि एक ऐसा शारीरिक अभिलक्षण है जिसे मस्तिष्क के दाहिने हिस्से और तदनुसार प्रज्ञता एवं सभ्यता के बेहतर विकास के लिए उत्तरदायी माना जाता है, यथा वह अभिलक्षण जिसे फिशर यूरोपीय प्रजातियों के साथ सहसंबद्ध होने की आशा करते थे। कर्वे ने अपने शोध के दौरान सैकड़ों खोपड़ियों का नाप लिया, जिनमें से अनेक जर्मन औपनिवेशिक क्षेत्रों से प्राप्त हुई थीं। उनका निष्कर्ष मुखर रूप से स्पष्ट था और उनके गुरु द्वारा अप्रत्याशित भी, यथा उन्होंने सिद्ध कर दिया कि जातिवादी परिकल्पना मिथ्या थी..!

कर्वे भारत में एक ऐसी समाजशास्त्री मानवविज्ञानी हुईं जो अपने अपेक्षाकृत छोटे–से जीवन में ही नारीवादी सांस्कृतिक एवं सामाजिक टिप्पणियों के लिए और भारतीय जाति व्यवस्था पर अपने शोध–कार्य के लिए प्रसिद्ध हो गई थीं।

भारत की 'जातियों' और 'जनजातियों' संबंधी उनका जातिमूलक शोध–कार्य हालाँकि कुछ कम ही प्रसिद्धि पा सका – जिसमें उन्होंने वही विधियाँ और साधन अपनाए थे जिन्हें वह बर्लिन में प्रयोग करना सीखकर आई थीं, यथा उन्होंने भारत में विभिन्न सामाजिक समूहों के अनेक मानवशास्त्रीय जातिमूलक अभिलक्षणों का मापन एवं विश्लेषण किया। इस प्रकार उन्होंने मानवीय भिन्नता के नस्लीयकरण में अपने उस योगदान की विरासत को यहाँ भी कायम रखा था जो औपनिवेशिक ब्रिटिश नृविज्ञान के साथ आरंभ हुआ था।

यद्यपि कर्वे महिलाओं के मुद्दों पर मुखर थीं, जातीय एवं धार्मिक भेदभाव के विषय में उन्होंने चुप्पी ही साथ ली थी, विशेषकर अपने आरंभिक कार्य के दशकों (सन 1930–1950 के दशक) में। अपने जीवन के अंतिम दशक में उन्होंने बहुसंस्कृतिवादी आलंकारिक और प्रजाति–विरोधी रवैया ही अपनाया, परंतु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लम्बे समय तक उन्होंने अपने अनुसंधान में जातिमूलक विधियाँ ही अपनाई थीं, जिस अवधि में उनकी अचानक मृत्यु से दो वर्ष पूर्व (सन् 1968) का समय भी शामिल था (बरबोसा, 2021)।

वर्ष 1939 में अपनी जन्मस्थली भारत लौटकर कर्वे ने पुणे स्थित 'डेक्कन कॉलेज पोस्ट–ग्रेजुएट एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट' में समाजशास्त्र एवं मानवविज्ञान के व्याख्याता का पदभार सँभाला। तदोपरांत समाजशास्त्र एवं मानवविज्ञान के विभाग–प्रमुख के रूप में उन्होंने सेवानिवृत्त होने तक कार्य किया। अपनी अकादमिक दक्षता के साथ–साथ सामान्य रुचि के विषयों पर लेखन के बल पर वह प्रसिद्धि और लोक प्रशंसा पाने में सफल रहीं। शीघ्र ही उनके पाठक वर्ग का व्यापक विस्तार हो गया।

इरावती कर्वे ने महाराष्ट्र में (एम्सली हॉर्निमैन फंड के वित्तीय सहयोग से) मानवशास्त्रीय अध्ययन भी किए, जिसके परिणाम पुस्तक के रूप में वर्ष 1953 में प्रकाशित हुए। इस पुस्तक ने महाराष्ट्र में रहने वाले लोगों के विषय में ज्ञान की प्रगति में एक अवस्था चिह्नित करने के लिए बेहद उपयोगी आँकड़े प्रदान किए। कर्वे ने विभिन्न शैक्षणिक विषयों के साथ–साथ सामान्य रुचि के विषयों पर मराठी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लिखा। वह महर्षि धोंडो केशव कर्वे का बहू थीं। उनके पति दिनकर कर्वे एक शिक्षक थे। उनकी बेटी गौरी देशपांडे ने एक लेखिका के रूप में नाम कमाया। इरावर्ती कर्वे ने वर्ष 1947 में दिल्ली में आयोजित 'राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस' के मानवविज्ञान विभाग की अध्यक्षता की। वर्ष 1970 में पुणे में हृदय गति रुकने के कारण उनकी मृत्यु हो गई।

8.3 मुख्य विचार

इरावती कर्वे के मुख्य विचार भारत में हिन्दू समाज व उसकी जाति व्यवस्था के साथ–साथ नातेदारी व्यवस्था पर भी केंद्रित थे। उन्होंने *महाभारत* के विषय में व्यापक रूप से लिखा, जिसमें उनका पात्र अध्ययन इस महाकाव्य के नायकों को ऐतिहासिक पात्रों के रूप में लेता है और उनकी भाव–भंगिमाओं एवं व्यवहार को उस काल को समझने के लिए प्रयोग करता है जिसमें वे रहते थे। उनके अनुसंधान सरोकार निम्नलिखित पहलुओं पर केंद्रित होते थे –

- भारतीय जनसमुदाय का प्रजातीय संरचना;
- भारत में नातेदारी व्यवस्था;
- जाति की उत्पत्ति; तथा
- ग्रामीण एवं शहरी समुदायों का समाजशास्त्रीय अध्ययन।

8.3.1 हिन्दू समाज

हिंदू सोसायटी – एन इंटरप्रिटेशन (डक्कन कॉलेज, 1961) एक हिंदू समाज संबंधी अध्ययन है, जो कि कर्वे द्वारा अपनी अध्ययन यात्राओं के दौरान एकत्र किए गए आँकड़ों तथा हिंदी, मराठी, संस्कृत, पाली एवं प्राकृत भाषाओं में प्रासंगिक ग्रंथों के उनके अध्ययन पर आधारित है। इस पुस्तक में उन्होंने हिंदू धर्म में जाति व्यवस्था के पूर्व–आर्य अस्तित्व पर चर्चा की और उसके विकास को उसके वर्तमान स्वरूप में खोजा।

इरावती कर्वे के अनुसार, ''भारतीय जाति समाज अर्ध–स्वतंत्र इकाइयों से मिलकर बना एक ऐसा समाज है जिसमें प्रत्येक इकाई व्यवहार का अपना ही कोई परंपरागत प्रतिमान दर्शाती है। इसके परिणामस्वरूप ही मानदंडों एवं व्यवहार की बहुलता उत्पन्न हुई है।

तदनुसार, जाति में पाए जाने वाले विशिष्ट स्तरीकरण में हिंदू धर्म अंतर्निहित है''। कर्वे ने अपनी पुस्तक का आरंभ हिंदू समाज में पाए जाने वाले जटिल प्रतिमानों को ध्यान में रखते हुए ही किया। वह जाति को एक ऐसा अंतर्विवाही नातेदारी समूह कहती हैं जो किसी भी दूसरे समूह से भिन्न होता है। कर्वे ने दर्शाया है कि जातियाँ वस्तुतः अपेक्षाकृत लघु सजातीय इकाइयों अथवा जातियों से मिलकर बने जाति–समूह ही हैं। ऐसे किसी भी समूह में जातियों की संख्या भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न होती है।

जाति समाज के संरचनात्मक अभिलक्षणों पर चर्चा करते हुए कर्वे कहती हैं कि वह 'ढीला' और 'बहुत लोचदार' होता है। आंतरिक रूप से किसी भी जाति का अपना ही स्वतंत्रप्राय संगठन होता है – प्रत्येक जाति अपने आप में व्यवहार्य होती है। मानकीकरण का अभाव एवं विविधता की अपार सहिष्णुता ही उनके विचार से हिंदू धर्म के वैश्विक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति एवं परिणाम हैं – जो कि अनेकता में एकता संबंधी उसकी मूल अवधारणा में नजर आते हैं।

जाति विषयक कर्वे के विचार मानवशास्त्रीय एवं रक्त–समूह सर्वेक्षणों पर आधारित थे, जो कि उन्होंने जाति पर अपने अनुसंधान के दौरान किए थे। वह हिंदू समाज का संदर्भ अनेक अलग–अलग सांस्कृतिक इकाइयों के एक साथ निर्बंध आने के रूप में देती हैं। चितपावन ब्राह्मणों पर उनका शोध–प्रबंध दैहिक मानवशास्त्रीय अध्ययन (नेत्र–वर्ण मापदंड) के साथ–साथ पुराणों एवं महाभारत व अन्य पौराणक कथाओं से उद्धृत जाति मूल संबंधी एक भारत–शास्त्र विषयक चर्चा पर भी आधारित था। वह भारतीय समाज को जातियों के एक ऐसी पैबंदकारी के रूप में देखती थीं जिसमें वे शारीरिक एवं सांस्कृतिक रूप से परस्पर भिन्न होती हैं।

कर्वे ने महाराष्ट्र पर समाजशास्त्र एवं मानवविज्ञान की वंशावली का संबंध रानाडे, तिलक व गोखले के सामाजिक लेखन से जोड़ा, जिसके बाद 'सेंट्रल प्रोविन्सिस में जनजातियों व जातियों' पर रसेल एवं हीरालाल की कृतियाँ प्रकाशित हुईं। नृजातीय विषयक उनकी कृतियों का सरोकार निम्नलिखित से माना जा सकता है –

(i) शारीरिक नृविज्ञान एवं पुरातत्व – मुख्यतः मानवशास्त्रीय अन्वेषण;

(ii) सांस्कृतिक नृविज्ञान – नातेदारी, जाति, ग्राम समुदाय एवं जनजातियाँ – जो भारत–शास्त्र विषयक अध्ययन से युक्त हैं, यथा लोकगीत, महाकाव्य एवं मौखिक परंपराएँ;

(iii) सामाजिक–आर्थिक सर्वेक्षण – साप्ताहिक बाजार, बाँध विस्थापित, शहरीकरण, पशुचारक एवं स्थानिक संगठन; तथा

(iv) समकालीन सामाजिक टिप्पणी – महिला, भाषा एवं प्रजाति।

कर्वे का विचार था कि भारत के समक्ष सांस्कृतिक समस्याएँ धर्म, जाति एवं परिवार के इर्द–गिर्द ही घूमती हैं। उन्होंने अनुभव किया कि कोई सर्वमान्य भाषा विकसित करना, समान नागरिक संहिता लागू करना और जाति व्यवस्था का उन्मूलन करना मुश्किल ही है। उन्होंने पाया कि एकरूपता के माध्यम से उपमहाद्वीप को जोड़ने का कार्य प्राचीन जीवनशैली के मूल्यवान सांस्कृतिक लक्षणों को नष्ट कर देगा। इन्हीं मूल्यवान लक्षणों को कर्वे द्वारा सहिष्णुता एवं विविधता के प्रति जागरूकता के रूप में वर्णित किया गया है।

भाषा और स्कूली शिक्षा जैसे समाज के मुद्दों पर कर्वे ने एक सशक्त मराठी राष्ट्रवाद को मस्तिष्क में रखा और उन्होंने हिन्दी को किसी राष्ट्रभाषा के रूप में श्रेष्ठ दर्जा दिए जाने से अथवा लोक सेवाओं में पहुँचने के लिए अंग्रेजी भाषा को प्रधानता दिए जाने से असहमति जताई। उन्होंने जोर देकर कहा कि सभी प्रकार की प्राथमिक शिक्षा किसी क्षेत्रीय भाषा में ही हो और कोई भी अंग्रेजी माध्यम का स्कूल न हो।

1. इरावती कर्वे के अनुसंधान हित किन पहलुओं पर केंद्रित थे?

……

……

……

……

2. इरावती कर्वे के पीएच.डी शोध–प्रबंध का विषय क्या रहा?

……

……

……

……

8.3.2 नातेदारी व्यवस्था

कर्वे की पुस्तक *किनशिप ऑर्गेनाइजेशन इन इण्डिया* (डेक्कन कॉलेज, 1953) भारत में विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन प्रस्तुत करता है। उन्होंने निम्नलिखित विविधताओं को जुटाने के लिए भाषायी क्षेत्रों पर भारत में नातेदारी प्रतिमानों का मानचित्रण किया –

1. उत्तरी क्षेत्र में भारोपीय अथवा सांस्कृतिक व्यवस्था;
2. दक्षिण क्षेत्र में द्रविड़ नातेदारी;
3. मिश्रित प्रतिमानों का एक मध्य क्षेत्र (यथा, महाराष्ट्र में विद्यमान); तथा
4. पूर्व में मुंडारी नातेदारी व्यवस्था।

उपर्युक्त में प्रत्येक भाषाई क्षेत्र के भीतर जातियों व उपजातियों के बीच भिन्नताएँ देखी जाती हैं। इस समस्त विविधता में एकात्मकता श्रुति साहित्य (वेद, ब्राह्मण और उपनिषद) तथा महाभारत एवं रामायण जैसे महाकाव्यों द्वारा विहित की गई, जिसे कर्वे प्राचीन उत्तर भारत में संयुक्त परिवार के समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन को रूप में देखती हैं। उत्तर भारत की भारोपीय नातेदारी का विश्लेषण महाभारत में नातेदारी शब्दावली की व्युत्पत्तिक समीक्षा, संस्कृत एवं पाली ग्रंथों में निहित नातेदारी प्रथाओं के अवलोकन और विभिन्न भाषाओं में स्वजन हेतु समकालीन शब्दों के समरूप संग्रह के माध्यम से किया जाता है। भारत की इस समस्त नातेदारी व्यवस्था में मुस्लिम, ईसाई व अन्य समुदायों की नातेदारी प्रथाओं का कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

कर्वे लिखती हैं कि उत्तर भारत में महिलाओं को अल्प आयु में ही उनके परिवार से अलग कर दूर कहीं अज्ञात ससुराल में रहने भेज दिया जाता है, जबकि दक्षिण भारत में युवतियाँ विवाहोपरांत भी अपने संबंधियों के बीच ही रहती हैं। मध्य भारत में नातेदारी व्यवस्था उत्तर भारत की अपेक्षा कहीं अधिक आंतरिक भिन्नता दर्शाती है, जहाँ कुछ जातियों में दक्षिण भारत की भाँति एक पक्ष में (ममेरे) भाई–बहनों के विवाह की अनुमति है। उत्तर भारत में, कर्वे (1953) के अनुसार, चचेरे/ममेरे/मौसेरे भाई–बहनों के बीच विवाह संबंध का निषेध लगभग जातियों में है।

लेखिका के शब्दों में, 'संयुक्त परिवार एक ऐसे लोगों का समूह होता है जो एक ही छत के नीचे रहते हैं, एक ही चूल्हे पर पका खाना खाते हैं, समान रूप से संपत्तिधारक होते हैं,

समान रूप से पूजा–अर्चना आदि करते हैं और किसी प्रकार की आत्मीयता से परस्पर जुड़े रहते हैं।' इस प्रकार, कर्वे नातेदारी व्यवस्था संबंधी अपने शोध–कार्य में हमें भारतीय समाज की संरचना और सामाजिक व्यवस्थाओं संबंधी उसकी सीमा का बोध कराती हैं।

ओबेरॉय ने कर्वे का वर्णन भारतीय परिवार पर एक स्वदेशी 'नारीवादी' दृष्टिकोण रखने वाले अग्रदूत के रूप में किया है। उनके अनुसार, कर्वे ने पारिवारिक जीवन में आधुनिक परिवर्तनों का मूल्यांकन महिलाओं के जीवन पर उनके संभावित प्रभावों से भी किया। महिलाओं के प्रति उनकी सहानुभूति को वर्ष 1975 में भारतीय महिलाओं की अनुमानित प्रस्थिति पर उनके निबंध में देखा जा सकता है, जिसमें उन्होंने महिलाओं के रोजगार अथवा शिक्षा पर दीर्घावधिक रुझानों की समीक्षा की है।

वर्ष 1953 में प्रकाशित कर्वे का लेख 'द किनिशप मैप ऑफ इण्डिया' उत्तर भारत में विस्तारित विनिमय सिद्धांत के विपरीत दक्षिण भारत में निकट संबंधी से विवाह करने की प्रथा पर प्रकाश डालता है। इससे महिलाएँ बारंबार अपने माता–पिता के घर आ–जा सकती हैं और विवाहित महिलाओं द्वारा झेला जा रहा तनाव कम किया जा सकता है।

सुंदर लिखते हैं कि ऐसा लगता है मानो कर्वे स्वयं को नारीवादी कहलाना पसंद नहीं करती हैं क्योंकि वह अपने विचारों में उग्र सुधारवादी नहीं लगतीं। उदाहरण के लिए, कर्वे संयुक्त परिवार प्रणाली का समर्थन अपनी सभी समस्याओं एवं आनंदानुभूतियों वाले जीवन के एक अनिवार्य अंग के रूप में करती हैं, जहाँ पितृसत्ता एवं उत्पीड़न विषयक प्रश्न ही नहीं उठते।

जाति के विषय में कर्वे मुख्यतः दो प्रकरणों पर चर्चा करती हैं, यथा जाति की उत्पत्ति और विश्लेषण की इकाई, तथा दूसरी बात यह कि लघुतम सजातीय इकाई अथवा जाति व्यावसायिक विविधीकरण के कारण किसी वृहत्तर समूह के टूट जाने से उत्पन्न एक उत्पाद थी। यहाँ कर्वे का मत घुर्ये से भिन्न है, जो कि यह दावा करते हैं कि भारत में जाति हिंद–आर्य संस्कृति का एक ऐसा ब्राह्मणवादी उत्पाद है जो भारत के अन्य भागों में विसरण से फैला। कर्वे ने, दूसरी ओर, रक्त के नमूने, नेत्र–वर्ण आदि मानवशास्त्रीय प्रमाण एकत्र किए ताकि यह दावा किया जा सके कि यह चितपावन ब्राह्मण की भाँति उप–जाति ही है जिसे 'जाति' मानकर व्यवहार किया जाना चाहिए, जबकि समग्र श्रेणी महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण को एक 'जाति–समूह' मानकर ही चलना चाहिए। इसके लिए वह कारण यह मानती हैं कि चितपावन, कहरदास, सारस्वत, देशस्थ, ऋग्वेदी और मध्यानदीन ब्राह्मण रोटी बेटी का व्यवहार नहीं करते, बल्कि उनके विवाह के नियम अलग हैं और वे जातीय रूप से परस्पर भिन्न होते हैं।

कर्वे के अनुसार, जाति एक ऐसा समूह होती है जो सगोत्र विवाह की प्रथा अपनाता है, अपने प्रसरण अथवा विसरण का एक विशिष्ट क्षेत्र रखता है (सामान्यतः एक भाषाई क्षेत्र के भीतर ही), एक अथवा एकाधिक परंपरागत व्यवसाय अपना सकता है, किसी पदानुक्रमित मापदंड पर अपनी न्यूनाधिक नियत अथवा लचर स्थिति दर्शा सकता है, तथा अन्य जातियों के प्रति व्यवहार की पारंपरिक रूप से परिभाषित रीतियाँ अपनाता है।

समाजशास्त्र में कर्वे ने सामाजिक–आर्थिक सर्वेक्षण अथवा नीति अध्ययन कार्यों के रूप में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी परवर्ती पुस्तकें मुख्यतः वर्णनात्मक हैं और उनमें तालिकाओं की भरमार है। उनका प्रथम सर्वेक्षण पश्चिम खानदेश की भील जाति पर था। उनका तर्क था कि जनजातीय लोग भारतीय जनसमुदाय के अन्य भागों से भिन्न नहीं है और 'आदिमता' के आधार पर एक पूरी तरह से नई इकाई बना देना गलत होगा। उनके विचार से जनजातीय लोगों की आगे बढ़ने और सम्मिलित हो जाने में मदद की जानी चाहिए तथा उन पर कोई भी बाहरी नियमावली नहीं थोपी जानी चाहिए।

कर्वे ने देखा कि नातेदारी व्यवस्था जाति व्यवस्था से प्रभावित और प्रबलित होती है और ये दोनों ही व्यवस्थाएँ विभिन्न भाषायी क्षेत्रों में पाए जाने वाले कुछ विशिष्ट प्रतिमानों के अनुरूप होती हैं। उनका कहना है कि हमें यह पता लगाना पड़ता है कि विचलन और विपथगमन के लिए किसी सामाजिक संरचना में कितनी सहनशीलता है। किसी सामजिक प्राधार की कठोरता अथवा लोचता उस समाज विशेष की सामाजिक संरचना की प्रकृति पर अथवा समग्र सांस्कृतिक ताने–बाने पर निर्भर हो सकती है।

ब्राह्मणवादी धर्मशास्त्रों में विवाह–विच्छेद को सहन नहीं किया जाता है और इसे धर्माचार्यों की सहमति प्राप्त नहीं होती। कर्वे लिखती हैं कि पूरे भारत में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि शीर्षस्थ मानी जाने वाली कुछ जातियों को छोड़कर शेष सभी जातियों में विवाह–विच्छेद एक दृढ़तः स्थापित सामाजिक व्यवस्था है। विवाह–विच्छेद के अस्तित्व को स्वीकार करने से इंकार करने से नातेदारी एवं जाति व्यवस्थाओं पर दूरगामी प्रभाव पड़ते हैं। उन्होंने देखा कि कोई इस प्रकार का सामाजिक प्राधार भी हो सकता है जो विचलन के प्रति किसी अन्य सामाजिक प्राधार की अपेक्षा कहीं अधिक सहिष्णु हो। सांस्कृतिक संपर्क जैसे बाहरी कारक अनेक प्रकार के विचलन की ओर प्रवृत्त कर सकते हैं।

भारत के अधिकांश क्षेत्रों में परिवार अपने स्वयं का पालन करने वाली एक स्वायत्त इकाई होता है। अपने स्थान पर जाति भी एक संकुचित स्वायत्त इकाई ही है, जो कि अन्य समरूप इकाइयों के साथ कुछ सीमित संपर्क रखती है और जो कुछ मामलों में परिवारों के व्यवहार को नियंत्रित भी करती है। एक ही स्थान पर रहने वाली विभिन्न जातियाँ विवाह के संबंध में भिन्न–भिन्न नियमों का पालन करती हैं, भिन्न–भिन्न वंशागुनत व्यवसाय अपनाती हैं तथा भिन्न–भिन्न देवी–देवताओं को मानती हैं।

अतः परिवार और जाति को इस प्रकार के सामाजिक समूह कहा जा सकता है जिनमें रहने वाले व्यक्ति उस समूह से संबंधित होने के प्रति सचेत होते हैं। संयुक्त परिवार आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते रहे हैं। वह गाँव भी जहाँ लोग अपना पूरा जीवन बिताते थे, सभी निवासियों का अंतिम सहारा होता था। औद्योगिक शहरों के उदय एवं रोजगार के अवसरों के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार व ग्रामीण समुदाय के बंधन अब ढीले पड़ गए हैं।

8.3.3 युगांत

इरावती कर्वे का *युगांत* नामक महाकाव्य *महाभारत* के पुनर्लेखन के रूप में एक ऐसा साहित्यिक एवं समाजशास्त्रीय ग्रंथ है जो प्राचीनकाल के इतिहास, संस्कृति एवं दर्शन का सम्मिश्रण प्रस्तुत करता है। यह पुस्तक एक साहित्यिक कृति के रूप में, एक समाजशास्त्रीय अध्ययन के रूप में और एक नृजातीय एवं सांस्कृतिक दस्तावेज के रूप में उल्लेखनीय है तथा एक मानवीय आवश्यकताओं एवं प्रतिक्रियाओं को प्रतिबिंबित करने वाले दर्पण के रूप में कार्य करती है, जो कि अतीत एवं वर्तमान काल दोनों में एक समान होते हैं।

इरावती कर्वे का कहना है कि *महाभारत* के मुख्य पात्र न तो पूर्णतः भले हैं और न ही पूर्णतः बुरे, अपितु वे दोनों का मिश्रण हैं। वह प्रत्येक पात्र की समीक्षा करती हैं और मानवीय भावनाओं (सकारात्मक और नकारात्मक दोनों) की एक विस्तृत शृंखला की कारगुजारी को सुलझाती हैं। अपनी प्रस्तुति में वह पात्रों के गुण–दोषों पर टीका–टिप्पणी किए बिना एक तथ्यात्मक स्वर अपनाती हैं। वह इस साहित्यिक ग्रंथ और समाज के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं सभ्यतागत पहलुओं का समानांतर अध्ययन प्रस्तुत करती हैं।

काव्य घुमंतु लोकगायकों द्वारा मौखिक रूप से गाया जाता था, जिन्हें 'सूत' कहा जाता था। वर्णन विधि का उल्लेख करते हुए कर्वे उसकी संरचना को बाह्य एवं आंतरिक रूप से निकलकर आती कथा के अंदर से कथा के रूप में देखती हैं। मुख्य कथा का सूत्र कभी

नहीं भुलाया जाता है। महाभारत की कथा में अनेक सूत्रधार हैं और 18–दिवसीय युद्ध की घटनाओं का वर्णन सूत कथावाचक संजय द्वारा धृतराष्ट्र के समक्ष किया गया है।

विभिन्न सूतों के भिन्न–भिन्न संस्करणों से लेकर काव्य को एक सुसंगत पाठ के रूप में ढाल दिया गया। महाकाव्य महाभारत ने अपना आकर्षण भारत में विभिन्न संप्रदायों के बीच बिखेरा – बौद्धों के लिए इसकी उत्कृट आचार–संहिता और जैनियों एवं मराठियों के लिए कृष्ण की कथा – जबकि *भगवद् गीता* भारत के भीतर व बाहर दोनों जगह सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली पुस्तक है। यह कथा आदिवासियों के बीच भी लोकप्रिय हुई, जिन्होंने भीम में लोक–साहित्य के शक्तिशाली पुरुष का आदिरूप देखा। इस प्रकार महाभारत की अपने पाठक वर्ग के लिए भिन्न–भिन्न कोटि में सार्थकता एवं प्रासंगिकता देखी जाती है।

एक समाजशास्त्री के रूप में इरावर्ती कर्वे का मानना है कि आज की पीढ़ी में इस उत्कृष्ट महाकाव्य की जानकारी का अभाव है और इसीलिए वह इस कथा को पुनः–पुनः सुनाती हैं ताकि युवा पीढ़ी को यह ज्ञान हो सके कि उनकी समस्याएँ वही हैं जिनका सामना महाकाव्य के पात्रों द्वारा किया गया। इसमें ऐसे मुद्दों को उठाया गया है जो अनिवार्यतः मानवीय हैं। इसका प्रतिपाद्य विषय एक जानी–मानी कथा ही है, यथा संपत्ति को लेकर विवाद। यहाँ विवाद हस्तिनापुर के सिंहासन के लिए कौरवों और पांडव राजकुमारों, यथा धृतराष्ट्र और पांडु के पुत्रों, के बीच है।

इरावती महाभारत के विभिन्न पात्रों व उनके कार्यों को किसी नैतिकता के चश्मे से व्यक्तिनिष्ठ रूप में नहीं, बल्कि निष्पक्ष रूप में उन घटनाओं के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं जिन्होंने विभिन्न लोगों की नियति को प्रभावित एवं निर्धारित किया। तदनुसार, उक्त पात्र अच्छाई व बुराई के अपरिभाषित क्षेत्र में ही रहते हैं और उनके कार्यों का दुखद अंत होता है। इरावर्ती कर्वे की *द महाभारत* ''अच्छे होने की कठिनाई'' का वर्णन करती है। (गुरुचरण दास)। भीष्म का समस्त जीवन एक निष्फल बलिदान सिद्ध हुआ।

कर्वे कहती हैं, ''राजनीति के क्षेत्र में उनके कार्य भले ही न्यायसंगत हों, परंतु मानवीय दृष्टिकोण से वे निश्चय ही दोषपूर्ण हैं।'' वह उनके अनेक कार्यों के औचित्य पर सवाल उठाती हैं। *द महाभारत* के प्रति इरावती का दृष्टिकोण सम्मान, बलिदान, अपनी ही भलाई आत्म–केंद्रित व्यसन आदि मूल्यों के अंधानुकरण से काफी दूर है। उनका कथावाचन व्यक्ति की दृष्टि से परे मानवतावादी दृष्टि के इर्द–गिर्द घूमता है, जो कि प्रायः साथियों पर विनाशकारी प्रभाव के रूप में परिणत होता है। इसी प्रकार, युधिष्ठिर द्वारा निष्ठापूर्वक धर्म का पालन व द्युत क्रीड़ा हेतु उसकी मानसिक दुर्बलता तथा कर्ण की उदारता मानव क्षमता की भारी बर्बादी के साथ एक त्रासदी में ही परिणत होते हैं।

पुनश्च एक समाजशास्त्री के रूप में इरावती कर्वे ने मानवीय सामाजिक व्यवहार का अध्ययन किया तथा एक मानवशास्त्री के रूप में उन्होंने मनुष्यों के शारीरिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास का एक कुशाग्र अध्ययन प्रस्तुत किया।

बोध प्रश्न 2

1. इरावती कर्वे की पुस्तक *किनशिप ऑर्गेनाइजेशन इन इंडिया* में वर्णित नातेदारी प्रतिमानों के नाम लिखें।

   .....

   .....

   .....

   .....

2. इरावती कर्वे के दृष्टिकोण के संदर्भ में जाति नातेदारी व्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित करती है? स्पष्ट करें।

……

……

……

……

8.4 महत्वपूर्ण कृतियाँ

इरावती कर्वे की कुछ महत्वपूर्ण कृतियाँ निम्नलिखित हैं –

1. *किनशिप ऑर्गेनाइजेशन इन इंडिया* (1953)
2. *हिंदू सोसाइटी : एन इंटरप्रिटेशन* (1961)
3. *महाराष्ट्र : लैंड एंड इट्स पीपल* (1968)
4. *युगांत : द एंड ऑफ एन ईपक* (1969)

8.5 सारांश

इस इकाई में हमने इरावती कर्वे के जीवन एवं कृतियों के विषय में जाना। हमने उस सामाजिक एवं शैक्षणिक परिवेश की समझ विकसित करने के साथ शुरुआत की जिसमें उनकी अवधारणाओं ने जन्म लिया। तदोपरांत हमने उनकी मुख्य अवधारणाओं पर विस्तृत चर्चा की। हमने पाया कि कर्वे ने भारत–शास्त्र में अपनी विशेषज्ञता के साथ मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण को एकीकृत किया। यही बात उनके कार्य को दूसरों के कार्य से भिन्न दर्शाती है। उनकी पुस्तकें उस समय के समाज की समग्र एवं गहन समझ को प्रस्तुत करती हैं।

8.6 संदर्भ

बरबोसा थियागो पिंटो (2021), *द कॉन्ट्राडिक्शन्स ऑफ इरवती कर्वे : एक कनवर्सेशन* https://migrantknowledge.org/2021/11/09/contradictions-of-irawati-karve/

इरावती कर्वे (1953), *किनशिप ऑर्गेनाइजेशन इन इंडिया*, डेक्कन कॉलेज मानोग्राफ सीरीज–11, पूना : डेक्कन कॉलेज पोस्ट–ग्रेजुएट एंड रिसर्च इंस्टिट्यूट।

इरावती कर्वे (1961), *हिंदू सोसाइटी : एन इंटरप्रिटेशन*, पूना : डेक्कन कॉलेज।

इरावती कर्वे (1968), *महाराष्ट्र : लैंड एंड इट्स पीपल*, राजकीय मुद्रण निदेशालय, स्टेशनरी एवं प्रकाशन, महाराष्ट्र राज्य।

इरावती कर्वे (1969), *युगांतः द एंड ऑफ एन ईपक*, पूना : देशमुख प्रकाशन।

8.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. इरावती कर्वे के मुख्य अनुसंधान सरोकार निम्नलिखित पहलुओं पर केंद्रित थे –
   - भारतीय जनसमुदाय की प्रजातीय संरचना;
   - भारत में नातेदारी व्यवस्था;
   - जाति की उत्पत्ति; तथा
   - ग्रामीण एवं शहरी समुदायों का समाजशास्त्रीय अध्ययन।

2. चितपावन ब्राह्मणों पर इरावती कर्वे का शोध–प्रबंध शारीरिक मानवविज्ञानी अध्ययन (नेत्र–वर्ण मापन) के साथ–साथ पुराणों एवं महाभारत व अन्य पौराणिक कथाओं से उद्धृत जाति की उत्पत्ति पर एक भारत–शास्त्र विषयक चर्चा पर भी आधारित था।

बोध प्रश्न 2

1. इरावती कर्वे द्वारा अपनी पुस्तक *किनशिप ऑर्गेनाइजेशन इन इंडिया* में भारत में नातेदारी प्रतिमान इस प्रकार हैं –

   i) उत्तरी क्षेत्र में भारोपीय अथवा सांस्कृतिक व्यवस्था;

   ii) दक्षिण क्षेत्र में द्रविड़ नातेदारी;

   iii) मिश्रित प्रतिमानों का एक मध्य क्षेत्र (यथा, महाराष्ट्र में विद्यमान); तथा

   iv) पूर्व में मुंडारी नातेदारी व्यवस्था।

2. कर्वे ने देखा कि नातेदारी व्यवस्था जाति व्यवस्था से प्रभावित एवं प्रबलित होती है और ये दोनों ही भिन्न–भिन्न भाषाई क्षेत्रों में देखे पाने वाले कुछ विशिष्ट प्रतिमानों के अनुरूप होती हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY